# स्याद्वाद

डॉ० सत्यदेव मिश्र

सत्यान्वेषण भारतीय दर्शन का प्रमुख वैशिष्ट्य है। द्रव्य और पर्याय—सत्य के दो पहलू हैं। सत्य के इस पक्षद्वैविध्य को भारतीय चिन्तकों ने विविध रूपों में देखा है। अद्वैत-वेदान्त ने द्रव्य को परमार्थिक सत्य मानकर पर्याय को काल्पनिक कहा है। बौद्धों ने पर्याय को पारमार्थिक बताया है, पर द्रव्य को काल्पनिक माना है। अन्य दार्शनिक इन ऐकान्तिक मतों का खण्डन-मण्डन करते प्रतीत होते हैं। समन्वयवादी जैन चिन्तकों ने सत्य को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त मानकर[१] द्रव्य तथा पर्याय—दोनों की परमार्थ सत्यता का उद्घोष किया है तथा स्वसिद्धान्त को अनेकान्तवाद के नाम से प्रतिष्ठित किया है।

अनेकान्तवाद में 'अन्त' पद का अर्थ है—धर्म। अतः अनेकान्तवाद का शाब्दिक अर्थ है—वस्तु के अनेक या अनन्त धर्मों का कथन। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु, चाहे वह जीव हो या पुद्गल या इन्द्रिय जगत् या आत्मादि, उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यशील है तथा नित्यता-अनित्यता, एकता-अनेकता, भाव-अभाव जैसे विरुद्ध धर्मों से युक्त है। जो वस्तु नित्य प्रतीत होती है, वह अनित्य भी है। जो वस्तु क्षणिक दिखाई देती है, वह नित्य भी है। जहां नित्यता है, वहां अनित्यता भी है। वस्तु में इन द्वन्द्वात्मक विरोधों की मान्यता अनेकान्तवाद है और वस्तु की अनेकान्तात्मकता का कथन स्याद्वाद है।[२] वस्तुतः "स्याद्वाद अनेकान्तवाद की कथन शैली है, जो वस्तु के विचित्र कार्यों को क्रमशः व्यक्त करती है। और विविध अपेक्षाओं से उनकी सत्यता भी स्वीकार करती है।"[३] अनेकान्तवाद और स्याद्वाद एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रमेयफलक पर जो अनेकान्तवाद है, वही प्रमाणफलक पर स्याद्वाद है।

स्याद्वाद जैन दर्शन का एक प्राचीन तथा बहुचर्चित सिद्धान्त है। प्राचीनतम जैन ग्रन्थों में इसका स्पष्ट संकेत है। भगवती सूत्र (१२-२-९) में इसके तीन भंगों की चर्चा है। भद्रबाहु ने सूत्रकृतांग में इसका विशेष उल्लेख किया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचास्तिकाय में तथा समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा में स्याद्वाद के सात भंगों का विशद विवेचन किया है। सिद्धसेन दिवाकर, अकलंक, विद्यानन्द प्रभृति जैन नैयायिकों ने इसे सुसम्बद्ध सिद्धान्त का रूप प्रदान किया है।

स्याद्वाद 'स्यात्' और 'वाद'—इन दो पदों से निष्पन्न है। 'स्यात्' पद तिङन्त प्रतिरूपक निपात है, जो अनेकान्त, विधि, विचार आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहां यह 'अनेकान्त' द्योतक है।[४] 'स्यात्' क्वचित् (देश) और कदाचित् (काल) का भी वाचक होता है।[५] संभावना और संशय के अर्थ में भी इसका प्रयोग प्राप्त होता है। स्याद्वाद के संदर्भ में 'स्यात्' पद संशयार्थक नहीं है। इसका अर्थ है—अनेकान्त और यह अनेकान्त अनन्तधर्मात्मक वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान है, अतः 'स्यात्' शब्द भी निश्चितार्थक है।[६] 'स्यात्' के इस अर्थ के साथ संभावना और सापेक्षता भी जुड़े हुए हैं।

'स्यात्' पद का प्रयोग किए बिना इष्ट धर्म की विधि और अनिष्ट धर्म का निषेध नहीं किया जा सकता, अतः पदार्थ का प्रतिपादन करने वाली प्रत्येक वाक्य-पद्धति के साथ 'स्यात्' पद का प्रयोग किया जाता है। यह दो अर्थों को सूचित करता है—

१. विधि शून्य निषेध और निषेध शून्य विधि नहीं हो सकती।

२. अन्वयी धर्म (ध्रौव्य या सामान्य) तथा व्यतिरेकी धर्म (उत्पाद और व्यय या विशेष)—ये दोनों सापेक्ष हैं। ध्रौव्य-रहित

---

१. 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्', तत्त्वार्थसूत्र, ५।२९

२. 'अनेकान्तात्मकार्थ कथनं स्याद्वादः', आचार्य अकलंकः लघीयस्त्रय, ६२

३. मधुकर मुनिः अनेकान्त दर्शन, पृ० २०

४. 'स च तिङन्त (तिङन्त) प्रतिरूपको निपातः। तस्यानेकान्तविधिविचारादिषु बहुष्वर्थेषु संभवत्सु इह विवक्षावशात् अनेकान्तार्थो गृह्यते।', तत्त्वार्थवार्तिक, ४।४२

५. 'सियासद्दो णिवायत्तादो जदि वि अणेगेसु अत्थेसु वट्टदे, तो वि एत्थ कत्थ वि काले देसे त्ति एदेसु अत्थेसु वट्टमाणो घेत्तव्वो।', कसायपाहुड, भाग १, पृष्ठ ३७

६. 'स्याद्वादो निश्चितार्थः अपेक्षितयाथातथ्यवस्तुवादित्वात्।', तत्त्वार्थवार्तिक, १।६



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पाद-व्यय और उत्पाद-व्यय-रहित ध्रौव्य कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकता।

वस्तु का स्वरूप सर्वात्मक नहीं है, अतः स्वरूप से उसकी विधि और पररूप से उसका निषेध प्राप्त होता है। उत्पाद और व्यय का क्रम निरन्तर चलता रहता है, अतः उत्पन्न पर्याय की अपेक्षा से वस्तु की विधि और अनुत्पन्न या विगत पर्याय की अपेक्षा से उसका निषेध प्राप्त होता है। स्याद्वाद का सिद्धान्त यह है कि विधि और निषेध वस्तुगत धर्म हैं। हम अग्नि का प्रत्यक्ष करते हैं, इसलिए उसकी विधि का अर्थ होता है कि अमुक देश में अग्नि है। हम धूम के द्वारा अग्नि का अनुमान करते हैं तब साधक हेतु मिलने पर अमुक देश में उसकी विधि और बाधक हेतु मिलने पर उसका निषेध करते हैं किन्तु स्याद्वाद का विधि-निषेध वस्तु के देश-काल से संबद्ध नहीं है। यह उसके स्वरूप-निर्धारण से संबद्ध है। अग्नि जब कभी और जहां कहीं भी होता है वह अपने स्वरूप से होता है, इसलिए उसकी विधि उसके घटकों पर निर्भर है और उसका निषेध उन तत्वों पर निर्भर है जो उसके घटक नहीं हैं। वस्तु में विधि और निषेध—ये दोनों पर्याय एक साथ होते हैं। विधि-पर्याय होता है इसलिए वह अपने स्वरूप में रहता है और निषेध-पर्याय होता है, इसलिए उसका स्वरूप दूसरों से आक्रान्त नहीं होता। यही वस्तु का वस्तुत्व है।[1] इस स्वरूपगत विशेषता की सूचना 'स्यात्' शब्द देता है।[2]

विभज्यवाद[3] और भजनावाद[4] स्याद्वाद के नामान्तर हैं। भगवान् महावीर ने स्वयं भी अनेक प्रश्नों के उत्तर विभज्यवाद की पद्धति से दिए हैं। जयन्ती ने पूछा—'भंते सोना अच्छा है या जागना अच्छा है।' महावीर ने कहा 'जयन्ती ! कुछ जीवों का सोना अच्छा है और कुछ जीवों का जागना अच्छा है।'[5] जयन्ती ने पुनः प्रश्न किया—'भंते' यह कैसे ?' महावीर का उत्तर था 'जो जीव अधर्मी हैं उनका सोना अच्छा है और जो धर्मी हैं, उनका जागना अच्छा है।' सोना ही अच्छा है या जागना ही अच्छा है, यह एकांगी उत्तर होता। इसलिए महावीर ने प्रश्न का उत्तर विभाग करके दिया, एकांगी दृष्टि से नहीं दिया।

भजनावाद के अनुसार द्रव्य और गुण के भेद एवं अभेद का एकांगी नियम स्वीकार्य नहीं। उसमें भेद और अभेद दोनों हैं। 'द्रव्य से गुण अभिन्न है', यदि इस नियम को स्वीकृति दी जाय, तो द्रव्य और गुण दो नहीं रहते, एक हो जाते हैं। फिर 'द्रव्य में गुण'—इस प्रकार की वाक्य-रचना संभव नहीं। द्रव्य से गुण भिन्न है, यदि इस नियम को माना जाय, तो 'यह गुण इस द्रव्य का है'—इस प्रकार की वाक्य-रचना नहीं की जा सकती।

वस्तु स्वभावतः अनेकधर्मात्मक है। जो वस्तु मधुर प्रतीत है, वह कटु भी है, जो मृदु प्रतीत होती है, वह कठोर भी है। जो दीपक क्षण-क्षण बुझता और टिमटिमाता दिखाई पड़ता है, उसमें एकान्तक्षणिकता ही नहीं, द्रव्य रूप से स्थिरता भी है। 'जो द्वन्द्व (युगल) विरोधी प्रतीत होते हैं, उनमें परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है—इस स्थापना के आधार पर अनेकान्त का सिद्धान्त अनन्त विरोधी युगलों को युगपत् रहने की स्वीकृति देता है।[6] पर इन विरोधी युगलों को एक साथ व्यक्त नहीं किया जा सकता। इनके युगपत् प्रतिपादन के लिए भाषा में क्रमिकता और सापेक्षता चाहिए। यह सापेक्ष कथन या प्रतिपादन शैली स्याद्वाद है, जिसके अस्ति (विधि), नास्ति (निषेध) और अवक्तव्य आदि के भेद से अधोलिखित सात विकल्प हैं :—

१. स्याद् अस्ति एव—किसी अपेक्षा से है ही।
२. स्याद् नास्ति एव—किसी अपेक्षा से नहीं ही है।
३. स्याद् अस्ति एव स्याद् नास्ति एव—किसी अपेक्षा से है ही और किसी अपेक्षा से नहीं ही है।
४. स्याद् अवक्तव्य एव—किसी अपेक्षा से अवक्तव्य ही है।
५. स्याद् अस्ति एव स्याद् अवक्तव्य एव—किसी अपेक्षा से है ही और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य ही है।
६. स्याद् नास्ति एव स्याद् अवक्तव्य एव—किसी अपेक्षा से नहीं ही है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य ही है।
७. स्याद् अस्ति एव स्याद् नास्ति एव स्याद् अवक्तव्य एव—किसी अपेक्षा से है ही, किसी अपेक्षा से नहीं ही है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य ही है।

ये वचन विकल्प सप्तभंगी के नाम से प्रसिद्ध हैं।[7] इनमें प्रथम चार मूल भंग है और अन्तिम तीन इन्हीं के विस्तार है। मूल भंगों के स्पष्टीकरण के लिए एक व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१. 'स्वपरात्मोपादानापोहनव्यवस्थाप्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम्', तत्त्वार्थवार्तिक, १।६
२. मुनि नथमलः जैन न्याय का विकास, पृ० ६७
३. सूयगडो, १।१४।२२
४. कसायपाहुड, भाग १, पृ० २८१
५. भगवई, १२।५३-५४
६. मुनि नथमलः जैन न्याय का विकास, पृ० ६८
७. 'सप्तभिः प्रकारैर्वचनविन्यासः सप्तभंगी', स्याद्वादमञ्जरी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन व्यक्ति एक स्थान पर खड़े हैं। किसी आगन्तुक ने पूछा—'क्या आप इनके पिता हैं?' उसने उत्तर दिया—'हाँ (स्यादस्ति)—अपने इस पुत्र की अपेक्षा से मैं पिता हूं। किन्तु इन पिताजी की अपेक्षा से मैं पिता नहीं हूं (स्यान्नास्ति)। मैं पिता हूं भी, नहीं भी हूं (स्यादस्ति-नास्ति), किन्तु एक साथ दोनों बातें नहीं कही जा सकतीं (स्यादवक्तव्यः)—इसलिए क्या कहूं?'

स्याद्वाद का एक शास्त्रीय उदाहरण है—घट, जिसका स्वरूप-नियमन जैन दार्शनिक सप्तभंगी के माध्यम से इस प्रकार करते हैं—

स्याद् अस्ति एव घट : —कथंचिद् घट है ही।

स्याद् नास्ति एव घट : —कथंचिद् घट नहीं ही है।

स्याद् अस्ति एव घटः स्याद् नास्ति एव घटः—कथंचिद्घट है ही और कथंचिद् घट नहीं ही है।

स्यादवक्तव्य एव घटः—कथंचिद् घट अवक्तव्य ही है।

स्याद् अस्ति एव घटः स्यादवक्तव्य एव घटः—कथंचिद् घट है ही और कथंचिद् घट अवक्तव्य ही है।

स्यान्नास्ति एव घट : स्यादवक्तव्य एव घटः—कथंचिद् घट नहीं ही है और कथंचिद् घट अवक्तव्य ही है।

स्याद् अस्ति एव घटः स्यान्नास्ति एव घटः स्यादवक्तव्य एव घटः—कथंचिद् घट है ही, कथंचिद् घट नहीं ही है और कथंचिद् घट अवक्तव्य ही है।

'स्याद् अस्ति एव घटः'—कथंचिद् घट है ही। इस वाक्य में 'घट' विशेष्य और 'अस्ति' विशेषण है। 'एवकार' विशेषण से युक्त होकर घट के अस्तित्व धर्म का अवधारण करता है। यदि इस वाक्य में 'स्यात्' का प्रयोग नहीं होता तो 'अस्तित्व-एकान्तवाद' का प्रसंग आ जाता, जो इष्ट नहीं है। क्योंकि घट में केवल अस्तित्व धर्म नहीं है, उसके अतिरिक्त अन्य धर्म भी उसमें हैं। 'स्यात्' शब्द का प्रयोग इस आपत्ति को निरस्त कर देता है। 'एवकार' के द्वारा सीमित अर्थ को वह व्यापक बना देता है। विवक्षित धर्म का असंदिग्ध प्रतिपादन और अविवक्षित अनेक धर्मों का संग्रहण—इन दोनों की निष्पत्ति के लिए 'स्यात्कार' और 'एवकार' का समन्वित प्रयोग किया जाता है।[1]

सप्तभंगी के प्रथम भंग में विधि की और दूसरे में निषेध की कल्पना है। प्रथम भंग में विधि प्रधान है और दूसरे में निषेध। वस्तु स्वरूपशून्य नहीं है इसलिए विधि की प्रधानता से उसका प्रतिपादन किया जाता है और वह सर्वात्मक नहीं है, अतः निषेध की प्रधानता से उसका प्रतिपादन किया जाता है। जैसे विधि वस्तु का धर्म है वैसे ही निषेध भी वस्तु का धर्म है। स्व-द्रव्य की अपेक्षा से घट का अस्तित्व है। यह विधि है। पर-द्रव्य की अपेक्षा से घट का नास्तित्व है। यह निषेध है। इसका अर्थ यह हुआ कि निषेध आपेक्षिक पर्याय है—दूसरे के निमित्त से होने वाला पर्याय है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। निषेध की शक्ति द्रव्य में निहित है। द्रव्य यदि अस्तित्वधर्मा हो और नास्तित्व-धर्मा न हो तो वह अपने द्रव्यत्व को बनाए नहीं रख सकता। निषेध 'पर' की अपेक्षा से व्यवहृत होता है, इसलिए उसे आपेक्षिक या पर-निमित्तक पर्याय कहते हैं। वह वस्तु के सुरक्षा-कवच का काम करता है; एक के अस्तित्व में दूसरे को मिश्रित नहीं होने देता 'स्व-द्रव्य की अपेक्षा से घट है' और 'पर-द्रव्य की अपेक्षा से घट नहीं है'—ये दोनों विकल्प इस सत्यता को प्रकट करते हैं कि घट सापेक्ष है। वह सापेक्ष है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जिस क्षण में उसका अस्तित्व है, उस क्षण में उसका नास्तित्व नहीं है। अस्तित्व और नास्तित्व (विधि और निषेध)—दोनों युगपत् हैं, किन्तु एक क्षण में एक साथ दोनों का प्रतिपादन कर सके—ऐसा कोई शब्द नहीं है। इसलिए युगपत् दोनों धर्मों का बोध कराने के लिए अवक्तव्य भंग का प्रयोग होता है। इसका तात्पर्य यह है कि दोनों धर्म एक साथ हैं, किन्तु उनका कथन नहीं किया जा सकता।[2]

उक्त विवेचन का सार यह है कि स्याद्वाद के अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य आदि भंग घट वस्तु के द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा पर्याय पर निर्भर करते हैं। घट जिस द्रव्य से निर्मित है, जिस क्षेत्र, काल और पर्याय में है, उस द्रव्य, क्षेत्र, काल और पर्याय की दृष्टि से उसका अस्तित्व है, किन्तु अन्य-द्रव्य, अन्य-क्षेत्र, अन्य-काल और अन्य-पर्याय की अपेक्षा में उसका नास्तित्व है। इस प्रकार घट में अस्तित्व-नास्तित्व दोनों हैं, और इन युगल धर्मों को एक साथ नहीं कहा जा सकता अतः वह (घट) अवक्तव्य भी है।

अस्त, नास्ति तथा अवक्तव्य—ये तीन मूल भंग हैं। शेष चार भंग इन्हीं भंगों के योग-अयोग से निष्पन्न होते हैं,[3] अतः उनका विवेचन अनावश्यक है। सप्तभंगी से घटादि वस्तु के समग्र भावाभावात्मक, सामान्य-विशेषात्मक, नित्यानित्यात्मक और वाच्यावाच्यात्मक धर्मों का युगपत् कथन संभव है।

विवेचित उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्याद्वाद का महत्त्व जितना दर्शन की गम्भीर पहेलियां सुलझाने में है, उतना ही जीवन की जटिल समस्याओं का निराकरण करने में भी है। यह अनुभवगम्य तथा सापेक्षसिद्ध होने के कारण व्यावहारिक जगत् की भाषा

---

१. मुनि नथमल, जैन न्याय का विकास, पृ० ७०

२. वही, पृष्ठ ७०-७१

३. यशोविजय, जैनतर्कभाषा, १९-२०



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तथापि साम्प्रदायिक आग्रह के कारण कतिपय दार्शनिकों ने इसकी कटु आलोचना की है। शान्तरक्षित ने सप्तभंगी नय को उन्मत्त व्यक्ति का प्रलाप कहा है क्योंकि यह सत्त्व-असत्त्व, अस्तित्व-अनस्तित्व, एक-अनेक, भेद-अभेद तथा सामान्य-विशेष जैसे विरोधी धर्मों को एकत्र समेटने का उपक्रम करता है।[१] शंकराचार्य ने स्याद्वाद को संशयवाद का पर्याय मान लिया है तथा इसके खण्डन में यह कहा है कि एक वस्तु में शीत व उष्ण के समान विरोधी धर्म युगपत् नहीं रह सकते। वस्तु को विरोधी धर्मों से युक्त मानने पर स्वर्ग और मोक्ष में भी विकल्पतः भाव-अभाव और नित्यता-अनित्यता की प्रसक्ति होगी। स्वर्गादि के वास्तविक स्वरूप की अवधारणा के अभाव में किसी की इनमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार विश्वसनीयता एवं अविश्वसनीयता के विकल्पों से व्याहत आर्हत मत भी अग्राह्य होगा।[२] रामानुजाचार्य के अनुसार भी स्याद्वाद अयौक्तिक है क्योंकि छाया तथा आतप के समान विरुद्ध अस्तित्व तथा अनस्तित्वादि धर्मों का युगपत् होना असंभव है।[३] तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर ये आलोचनाएं असंगत सिद्ध होती है।[४] स्याद्वाद वस्तु को एक ही अपेक्षा से शीत-उष्ण नहीं कहता। जल शीतल है, इसका अर्थ यह है कि वह गरम दूध या चाय की अपेक्षा शीतल है। जल उष्ण है, इसका अर्थ है कि वह बरफ की अपेक्षा गरम है। यह नहीं कि जल में शीतलता और उष्णता एक साथ विद्यमान हैं। वस्तुतः जल अन्य वस्तु की अपेक्षा से शीतल और उष्ण है। इस अपेक्षा-भेद को न समझने के कारण ही शान्तरक्षित आदि ने स्याद्वाद का विरोध किया है। मल्लिषेण ने इन आलोचकों का उत्तर देते हुए कहा है कि वस्तु से सत्त्व का अभिधान उस (वस्तु) के रूप-द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा से होता है और उसके असत्त्व का अभिधान अन्य (वस्तु) के रूप-द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव की अपेक्षा से किया जाता है, अतः विरोध का अवकाश कहां है ?[५] इसके अतिरिक्त 'स्यात्' का अर्थ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, न 'शायद' है, न 'संभवतः' है और न 'कदाचित्' ही। स्याद्वाद के सन्दर्भ में यह 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा' का वाचक है। इसलिए 'स्याद्वाद' को संशयवाद कहना भ्रामक है। जहां संशय होता है, वहां परस्पर विरोधी अनेक धर्मों का युगपत् शंकात्मक ज्ञान होता है, क्योंकि संशय साधक और बाधक प्रमाण का अभाव होने से अनिश्चित अनेक अंशों का स्पर्श करता है और अनिर्णयात्मक स्थिति में रहता है। स्याद्वाद में यह नहीं होता। यहां परस्पर विरुद्ध सापेक्ष धर्मों का निश्चित ज्ञान होता है। वह अपेक्षाओं के बीच अस्थिर न रहकर, निश्चित प्रणाली के अनुसार वस्तु का बोध करता है।[६] स्याद्वाद में निश्चय है, अतः इसे अनिश्चयात्मक संशयवाद मानना सर्वथा अनुचित है। शंकराचार्य के द्वारा स्याद्वाद की आलोचना और भी अशोभनीय लगती है क्योंकि उन्होंने स्वयं भी परमार्थ तथा व्यवहार की अपेक्षा से नामरूपात्मक जगत् के मिथ्यात्व और सत्यत्व का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है तथा उनके अनिर्वचनीयतावाद पर स्याद्वाद के प्रमुख भंगों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

विद्वानों ने स्याद्वाद की तुलना भर्तृप्रपञ्च, नागार्जुन, हीगेल, काण्ट, ब्रैडले, स्पेन्सर, हेरेक्लाइट्स, ह्वाइटहेड प्रभृति दार्शनिकों के विचारों से की है,[७] पर यह एक अन्य लेख का विषय है, अतः यहां इसकी चर्चा उचित नहीं।

वैज्ञानिक सापेक्षवाद के सन्दर्भ में स्याद्वाद का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैज्ञानिकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि हम वस्तु के स्वरूप को एकान्तदृष्टि से नहीं अपितु अनेकान्तदृष्टि से ही जान सकते हैं और विश्लेषण कर सकते हैं। विज्ञान की प्रयोगशाला में यह तथ्य सामने आया है कि वस्तु में अनेक धर्म और गुण भरे हुए हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाईन आदि ने विश्व में व्याप्त सापेक्षता के सिद्धान्त की खोज द्वारा एक छोटे-से परमाणु तक में अनन्त शक्ति और गुणों का होना सिद्ध कर दिया है।[८] प्रोफेसर पी० सी० महालनबीस ने स्याद्वाद की सप्तभंगी को सांख्यिकी (statistics) सिद्धान्त के आधार रूप में उपन्यस्त किया है।[९]

प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि स्याद्वाद वस्तु-धर्म-विश्लेषण का व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त है और अपनी इन विशेषताओं के कारण ही यह उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय भारतीय चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है।

---

१. तत्त्वसंग्रह, ३११-३२७

२. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य. २।२।३३

३. 'एकस्मिन्वस्तुनि अस्तित्वानस्तित्वादेर्विरुद्धस्य च्छायातपवद्युगपदसंभवात्', शारीरकभाष्य, २।२।३१

४. S. Radhakrishnan: Indian Philosophy, Vol. I, पृ० ३०४

५. 'स्वरूपद्रव्यक्षेत्रकालभावैः सत्त्वम्, पररूपद्रव्यक्षेत्रकालभावैस्त्वसत्त्वम्, तदा क्व विरोधावकाशः', स्याद्वादमञ्जरी, पृ० १७६, तुलनीय-स्याद्वाद-मुक्तावली, १, १६-२२

६. मधुकर मुनि: अनेकान्त दर्शन, पृ० २५-२६

७. T. G. Kalghatgi : Jaina View of life, पृ० २३-३२;
अनेकान्तदर्शन, पृ० २७ तथा जैन न्याय का विकास, पृ० ७२

८. अनेकान्त दर्शन, पृ० २६

९. जैन न्याय का विकास, पृ० ७५-७७



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org